thearyasamaj.org

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल. 0011/2012-14

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 71 अंक : 27
सृष्टि संवत् 1960853115
12 अक्तूबर 2014
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292936, 5062726

जालन्धर

वर्ष–71, अंक : 27, 9/12 अक्तूबर 2014 तदनुसार 27 आश्विन सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

आदर से पूछने पर सत्य-सत्य कहना

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम्।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम्
-ऋ. 4/5/11

शब्दार्थ: हे **जातवेद:**=सर्वज्ञ ! **नमसा**= नमस्कारपूर्वक, आदर से **पृच्छ्यमान:**= पूछा जाकर **ऋतम्**= सत्य सत्य **वोचे**= मैं कहूं **यदि**=यदि **इदम्**=इसको **तव**=तेरे **आशसा**=उपदेश से पाऊं कि **त्वम्**= तू ही **अस्य**=इस सारे धन को **क्षयसि**= ठिकाने लगाता है **यत्+ह**= जोकि **विश्वम्**= सम्पूर्ण **दिवि**= द्यौ में है और **यत्+उ**= जो **द्रविणम्**= धन **पृथिव्याम्**= पृथिवी में है और **यत्**= जो अन्यत्र है।

व्याख्या= वेद शास्त्र में जिज्ञासु को विनीत होने का उपदेश है। प्रश्नोपनिषत् का आरम्भ हमारे उस कथन की पुष्टि करता है। वहां लिखा है कि सुकेशा आदि छह महाविद्वान जो ब्रह्मज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ थे, परब्रह्म की खोज करते हुये यह समझ कर कि भगवान् पिप्पलाद हमें सब कुछ बता सकेंगे-

समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्ना:।

समित्पाणि होकर भगवान पिप्पलाद की सेवा में उपस्थित हुये।

इसी प्रकार की कथा छान्दोग्योपनिषद् के पांचवें प्रपाठक में भी आती है। प्राचीनशाल आदि महा पाठशालाध्यक्ष, महाश्रोत्रिय (वेद के महाविद्वान) मिल कर विचार करने लगे- आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है? वे उद्दालक आरुणि के पास गये। उद्दालक ने सोचा कि मैं इनकी शंका का समाधान न कर सकूंगा। अत: उसने कहा कि इस समय कैकय देश का राजा अश्वपति इस विद्या का पण्डित है, हम सब उसके पास चलें। जब वे राजा के पास पहुंचे, उसने उन सब का यथायोग्य आदर किया, सबके आगे पूजा भेंट रखी। उन्होंने स्वीकार न की, राजा उद्विग्न हुआ। उन्होंने कहा, महाराज ! हम प्रयोजन विशेष से आए हैं, अत: उसकी सिद्धि कीजिए। राजा ने सुन कर दूसरे दिन बताने को कहा।

ते ह समित्पाणय: पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे।

वे प्रात: हाथ में समिधा लेकर उपस्थित हुये। मुण्डकोपनिषद् (1/2/12) में तो गुरु के पास समित्पाणि होकर जाने का विधान ही है। जैसा कि **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।**

उस परमतत्व के जानने के लिये वह समित्पाणि (हाथ में समिधा लेकर) होकर श्रोत्रिय = वेदवेत्ता, ब्रह्मनिष्ठ, गुरु के पास जाएं।

समिधा उपलक्षण हैं, कोई ऐसी वस्तु जिज्ञासु के हाथ में अवश्य होनी चाहिये, जिससे उसकी श्रद्धा प्रकट हो। जिसमें श्रद्धा भक्ति न हो, उसे तो उपदेश ही नहीं करना चाहिये, ऐसा हमारे शास्त्रों का विधान है। इसी भाव को मंत्र के पहले पाद में कहा है-

ऋतं वोचे नमसा पृष्ठ्यमान्:- आदर से पूछा जाकर सत्य सत्य कहूं। निरादर से, उपेक्षा से प्रश्न करने वाला जिज्ञासु नहीं हो सकता, वह वितण्डा करने वाला, जल्प करने वाला विजिगीषु हो सकता है। जिज्ञासु तो आदर से ही पूछे, जैसा कि वेद में कहा है- **नमसेदुप सीदत** (ऋ. 9//11/6) नमस्कार से जिज्ञासु बनो। जिससे पूछना है, उसकी भी परख कर लेनी चाहिये। प्रत्येक से पूछने का कोई लाभ नहीं। वेद में कहा ही है- **तवाशसा.... यदीदम्** यदि मैं तेरे उपदेश से इन सब को जान पाऊं।

अज्ञानी गुरु क्या समझाएगा और क्या बताएगा? उपनिषत् ने इसी का आशय लेकर गुरु के लिये श्रोत्रिय= वेदज्ञ (जिसे Theory का ज्ञान हो) और ब्रह्मनिष्ठ (जिस ने ब्रह्मविद्या की Practice भी की हो) होना आवश्यक बतलाया।

एक मनुष्य को क्रियात्मक ज्ञान है किन्तु वह दूसरों को बता नहीं सकता, अत: आचार्य बनने के वह अयोग्य है। एक को ग्रंथज्ञान बहुत है, किन्तु क्रिया द्वारा उसने उसका अनुशीलन कभी नहीं किया, अत: गुरु बनने के योग्य वह भी नहीं है। जिसमें ज्ञान और अनुष्ठान समानरूप से विराजमान हों, वह गुरु ग्रहण करने योग्य है। ब्रह्मविद्या का आचार्य सबसे पूर्व शिष्य को ब्रह्म के सर्वस्वामित्व का ज्ञान कराता है, अत: मंत्र के उत्तरार्ध में ब्रह्म का सर्वस्वामित्व निरूपित किया गया है।

-स्वाध्याय संदोह से साभार

thearyasamaj.org

स्वाध्याय के लाभ

ले० स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

(गतांक से आगे)

दांतों का व्यक्तित्व इसी में है कि आई वस्तु को पीस डाले, इसी में उनका पक्कापन है, और अंगूर का व्यक्तित्व इसी में है कि वह मुख में आते ही घुल जाए। घड़े और ईंट का पक जाना यही है कि जिस प्रयोजनार्थ वे बने उसके अनुरूप हों-जिस घड़े में पानी भरते ही उसका व्यक्तित्व घुल गया तो पता चला कि वह पक्का नहीं, तो पकना क्या है ? व्यक्ति का व्यक्तित्व सामने आ जाना। लोकपरिपाक का यही अर्थ हुआ कि व्यक्ति का लोक अभिव्यक्त हो गया, वह पक चुका।

जहां पंक्ति शब्द में इतना अर्थ गर्भित है वहां लोक शब्द में विस्तृत अर्थ निहित है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि लोक शब्द में जितने अर्थ निहित हैं वे सभी ऐसे व्यक्ति में पक गए हैं, उनका व्यक्तिकरण हो चुका है।

लोकपक्तिर्भवति-हम प्राय: इहलोक और परलोक शब्द का प्रयोग करते हैं, इसके अतिरिक्त ''भूर् भुव: स्व:'' इत्यादि सप्त लोकों का वर्णन भी करते हैं। परन्तु स्वाध्याय से होने वाली लोकपक्ति में तो लोकद्वय ही सम्मिलित हैं, वे यही दो प्रसिद्ध लोक हैं-इह और पर। इह-लोक में इह का निर्देश स्पष्ट ही इस लोक, यहां के लोक से, हमारी दुनिया से है। 'पर' से अभिप्राय प्राय: पराये से, दूसरे लोक से होता है। वह व्यक्ति जीवित रहते इहलोक की सिद्धि तो करता ही है, परन्तु परलोक की सिद्धि भी उसे निरन्तर होती है, और मरणोपरांत वह उसे पा भी लेता है। अर्थात् उसे जहां इहलोक सिद्ध हो जाता है, वहां परलोक भी सिद्ध हो जाता है-(प) लोकपंक्तिर्भवति।

त्रयो वाव इमे लोका:-निश्चय जानो कि यही तीन लोक हैं-मनुष्यलोक, पितृलोक, देवलोक। वह मनुष्य लोक को प्राप्त होता है इसका यही अभिप्राय होता है कि वह ऐसे समाज में रहता है, जहां मनुष्य के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार (उसका देवलोक पक जाता है) का अभिप्राय यही होता है कि वह ऐसे समाज में रहता है, जहां देवों के दर्शन होते हैं।

शतपथकार ने अन्यत्र (१।१।१।४) देव और मनुष्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या:। जिन्हें ऋत सिद्ध हो गया है, जो अपरिवर्तित नियमों के ज्ञाता ही नहीं, उन पर आचरण भी करते हैं, वे सत्यमय व्यक्ति देव हैं और जो ऋतनियमों के पालन करने में भूल कर जाते हैं, अनृत आचरण कर बैठते हैं वे मनुष्य हैं। जो नाप-तोलकर चलते हैं वे देव और जो नाप-तोलकर नहीं चल पाते वे मनुष्य। स्वाध्यायी को दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के, मनुष्य और देव के दर्शन होते हैं।

जहां वह मनुष्य लोक और देव लोक को जीत लेता है, वहां पितृलोक को भी जीत लेता है। वह ऐसे समाज में निवास करता है, जहां पितरों के दर्शन होते हैं। अर्थात् वह मनुष्य लोक को जीत लेता है-मानो ब्रह्मचर्यलोक को जीत लेता है, देवलोक को जीत लेता है, मानो सन्यास को जीत लेता है; पितृलोक को जीत लेने का अभिप्राय होता है कि वह वानप्रस्थ व्यक्तियों का भी प्रिय बन जाता है।

जहां लोकपक्ति का अर्थ लोक संग्रह है, वहां लोक शब्द का एक अर्थ दर्शनशक्ति भी है, अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति की दृष्टि पक जाती है। वह आप्त बन जाता है, साक्षात्कर्ता हो जाता है, उसकी दर्शनशक्ति इतनी सूक्ष्म और पैनी हो जाती है कि वह पदार्थ की गहराई में जाकर उसकी तह तक पहुंच जाता है, उससे कुछ ओझल नहीं रहता, सब कुछ उसे हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाता है, उसे दिव्यदृष्टि मिल जाती है। पहले उसकी दर्शनशक्ति पक जाती है, फिर उसकी उस दिव्यदृष्टि का लाभ उठाने के निमित्त लोग इकट्ठे होने लगते हैं, लोकसंग्रह होने लगता है।

इसीलिए स्वाध्याय से होने वाले लाभों में अन्तिम लाभ का वर्णन करते हुए यज्ञवल्क्य कहते हैं कि लोकपक्तिर्भवति उसकी दृष्टि पक जाती है, उसका दर्शन संशय-रहित हो जाता है, वह दिव्याद्रष्टा बन जाता है, वह भविष्य-वक्ता बन जाता है। ऐसे व्यक्ति के पास स्वभावत: लोगों का आना-जाना लगा रहता है, लोग उसके पक्के शिष्य बन जाते हैं। इस प्रकार प्रसंगात् उसका लोक-संग्रह सिद्ध हो जाता है।

आगे इस लोकपक्ति का लाभ करते हुए याज्ञवल्क्य लिखते हैं-लोक: पच्यमान: चतुर्भिर्धर्मैर् ब्राह्मणं भुनक्ति-अर्चया च, दानेन च, अज्येयतया च, अवध्यतया च-परिपक्व हुआ मनुष्य समाज (लोग) उस दर्शन बल प्राप्त स्वाध्यायशील ब्राह्मण को चार प्रकार के कर्त्तव्यों से सेवन करता है-अर्चना द्वारा-सेवा सत्कार द्वारा, स्थूल आर्थिक दान द्वारा, अज्येयता (न क्षीण होने वाली) सामर्थ्य द्वारा, (अहिंसनीय हो जाने से) सबके लिए अवध्य होने से रक्षा-द्वारा।

घ. 13-अर्चा-बुद्धि-पका हुआ मनुष्य-समाज सेवा से, सत्कार से, पूजा से, ब्राह्मण का सेवन करता है। यदि स्वाध्यायशील व्यक्ति का सेवन करना हो उसकी समीपता में रहना हो, उसके संग से लाभ उठाना हो तो उसका पहला उपाय है अर्चना, पूजा, यथायोग्य सत्कार। मनुष्य समाज यथायोग्य सत्कार द्वारा ही ब्राह्मण के पास पहुंच सकता है। अर्चना का अर्थ पूजा है और पूजा का अर्थ यथायोग्य सत्कार है। यथायोग्य सत्कार में अनेक विधियां हैं। सर्वप्रथम उसे उच्च पद पर आसीन करना है। जब उसके समीप आवे तो लोग अभिमान को हटाकर, सर्वथा उसके गुणों के वशीभूत होकर उसे उच्चासन पर बिठाकर, स्वयं नीचे बैठकर उसका सेवन करें।

दूसरे लोग जब उसके पास आते हैं तो श्रद्धान्वित होकर नम्र होकर, विनयशील होकर आते हैं। जहां स्वाध्यायशील व्यक्ति की अर्चना होती है, वहां जनगण में भी विनय, श्रद्धा, नम्रता आदि गुण आते हैं। इसी अर्चना से लोग उसका सेवन करते हैं। फिर प्राणिपात, उसके सामने झुककर प्रणाम करते हैं। निम्न आसन पर बैठकर बहुत शालीनता से प्रश्न करते हैं और उस दिव्यद्रष्टा से (समाधान पाकर) संशयरहित होते हैं। यदि उसे शारीरिक सेवा की आवश्यकता हो तो वे भी करते हैं। ये सभी अर्चना के अंग हैं। स्वाध्यायशील व्यक्ति को उच्चासन पर आसीन करना, उसके सामने झुकना, श्रद्धापूर्वक निम्न स्थान पर बैठना, नमस्कार करना-'परिप्रश्नेन सेवया' ये सभी अर्चना के ही रूप हैं। सो ब्राह्मण को अर्चना के ये सभी अंग अभ्युपगत होते हैं।

14. दानशीलता-स्वाध्यायशील व्यक्ति के सेवनार्थ जहां मानसिक दान का रूप उसके प्रति श्रद्धा, नम्रता, प्रणाम, परिप्रश्न आदि हैं, वहां स्थूल पदार्थों के दान तथा दक्षिणा द्वारा भी उसका सेवन होता है। उसकी सेवा में जाते समय लोग अपने हाथों में समर्पणार्थ कुछ न कुछ लेकर जाते हैं। उसे यदि भोजन की आवश्यकता हो तो भोजन, यदि वस्त्रों की आवश्यकता हो तो वस्त्र, यदि उसे स्वाध्याय-सामग्री (पुस्तक-सामग्री आदि) की आवश्यकता हो तो वह सब बात की बात में जुटा देते हैं। उसे कहने अथवा हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं, सब कुछ उसे दान द्वारा स्वयं उपलब्ध हो जाता है।

15. अज्येयतया च ब्राह्मणं भुनक्ति-मनुष्य समाज जहां उसकी अर्चना करता है, उसके प्रति भेंटें समर्पित करता है, वहां उसे अज्येय मानकर ही वह उससे ऐसा व्यवहार करता है। स्वाध्याय से व्यक्ति अज्येय हो जाता है और भक्तजन उसकी सेवा में यही समझ कर आते हैं कि यह अज्येय है। वे अभिमान, मद, मत्सर आदि का परित्याग करके ही आते हैं, उसके ढिंग छल-छद्म, दम्भ को छोड़कर ही आते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यह व्यक्ति सर्वथा अज्येय है, इसे क्षीण करना, हानि पहुंचाना सहज नहीं। इस प्रकार जहां स्वाध्यायशील व्यक्ति को अनेकों लाभ होते हैं, वहां लोक-परिपाकरूप फल से होने वाले लाभों में अर्चना, दान, अज्येययता भी स्वत: उपलब्ध हैं।

16. अवध्यता-लोक-परिपाक का एक फल अवध्यता है। वह अवध्यता प्राप्त कर लेता है। सभी लोग उसे अज्येय ही नहीं अवध्य मानकर भी उसका सेवन करते हैं। यह मानकर कि इसकी रक्षा में ज्ञान की रक्षा है, समृद्धि है, इसकी रक्षा में हमारे अधिकारों और स्वत्वों की रक्षा है, इसलिए यह रक्षणीय है, अवध्य है, हजार उपाय करके भी इसकी रक्षा करना हमारा धर्म है, अपने प्राणों की हवि देकर भी इसकी जान बचाना हमारा कर्त्तव्य है। (क्रमश:)

thearyasamaj.org

सम्पादकीय.....

राष्ट्रीय एकता का आधार: सांस्कृतिक सद्भाव

भारत देश अनेक भाषाओं, जातियों और अनेक धर्मों को मानने वाले लोगों का देश है। किन्तु इस अनेकता में भी एकता भारत की विशेषता है। जब इस एकता को खण्डित करने का प्रयास कहीं से भी होता है तो हम सजग होकर राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं। एक समस्या इस समय सांप्रदायिक सद्भाव से है। सांप्रदायिक सद्भाव से तात्पर्य है कि हिन्दु, मुसलमान ईसाई, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध आदि सभी मतावलम्बी व्यक्ति भारतभूमि को अपनी मातृभूमि मानकर स्नेह और सद्भाव के साथ रहें, यह राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। किन्तु समय- समय पर कुछ भ्रामक विचार स्वार्थ परायण लोगों के मन में आ जाते हैं और वे लोग सम्प्रदाय के नाम पर विषाक्त वातावरण बनाने में कामयाब हो जाते हैं। यह राष्ट्र के लिए समस्या उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में इस समस्या का हल द्वन्द्व, संघर्ष और मारकाट के द्वारा सम्भव नहीं है। पारस्परिक विचार विमर्श और सौहार्द के वातावरण में ही इसका समाधान खोजा जा सकता है। इन समस्याओं के समाधान में केवल राष्ट्रनेता या प्रशासनिक अधिकारी ही तत्पर रहें और जनता जो राष्ट्र की रीढ़ है उदासीन बनी रहे तो किसी भी समस्या का समाधान पा लेना सम्भव नहीं। हमें एक बार अपने देश के प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास और उसकी समृद्ध परम्पराओं पर दृष्टिपात करना होगा। समय-समय पर हमारी संस्कृति, सभ्यता को मिटाने के प्रयास किए गए परन्तु हमारी संस्कृति, सभ्यता और उसके नैतिक मूल्य इतने सुदृढ़ थे कि वे न तो मुगलों के आक्रमण से खण्डित हुए, न ही अंग्रेजों के संस्कृति के कारण बदले। कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है परन्तु फिर भी हमारी संस्कृति के आधार स्तम्भों को नष्ट नहीं कर सके। भारत की यह विशेषता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। भारत के नागरिक होने के नाते हमारा पुनीत कर्त्तव्य है कि हम इस भावना को नष्ट न होने दें बल्कि इसे और सुदृढ़ बनाने में अपना सहयोग दें।

राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रयत्नशील होने से पहले हमें राष्ट्र का स्वरूप जान लेना चाहिए। राष्ट्र की भूमि, भूमि के निवासी, व्यक्ति और निवासियों से राष्ट्र का स्वरूप निर्मित होता है। यह भारत भूमि सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचारों की जननी है। जो राष्ट्रीयता राष्ट्र की भूमि के साथ नहीं जुड़ी वह निर्मूल हो जाती है। राष्ट्रीयता की जड़े राष्ट्र भूमि में जितनी गहरी होंगी, राष्ट्रीय भावों का अंकुर उतना ही पल्लवित होगा। राष्ट्र की भूमि पर निवास करने वाले मनुष्य राष्ट्र का दूसरा अंग है। पृथ्वी और उसके निवासी दोनों के सम्मिलित होने से राष्ट्र का स्वरूप सम्पादित होता है। भारत भूमि के विशाल प्रांगण में सभी जातियों, और सभी धर्मों के मनुष्यों के लिए समान स्थान है। अत: भेदभाव भूलकर हमें समभाव के साथ, प्रेम और सौहार्द के साथ रहना चाहिए। राष्ट्र के स्वरूप में तीसरा अंग संस्कृति है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वास्तविक उन्नति सम्भव है। पारस्परिक सहिष्णुता ,सहयोग और समन्वय के द्वारा ही सामाजिक संस्कृति का रूप निखरता है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब राष्ट्र में शान्ति हो, सद्भाव हो, सहिष्णुता हो और अहिंसा का वातावरण हो।

भारत हमारे संविधान के अनुसार एक धर्म निरपेक्ष देश कहा जाता है। हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति को पूरी आजादी है कि वह अपने विश्वास के अनुसार अपने धार्मिक कृत्य और सामाजिक पर्व त्योहारों को आनन्द उत्साह के साथ सम्पन्न करें लेकिन त्योहारों को धूमधाम से मनाते समय इतना ध्यान अवश्य रखें कि दूसरे सम्प्रदाय के लोगों की भावना को कोई ठेस न पहुंचे। जैसा व्यवहार हम अपने लिए चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हम अपने दूसरे देशवासियों के साथ करें। यह सद्व्यवहार ही जियो और जीने दो की सत्प्रेरणा देता है। साम्प्रदायिक सद्भाव और सौहार्द बनाए रखने के लिए प्रत्येक देशवासी को यह हमेशा याद रखना चाहिए कि प्रेम से प्रेम, घृणा से घृणा और विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी घृणा को प्रेम से जीतने में विश्वास रखते थे। वे अपनी प्रार्थना सभा में कहा करते थे कि सभी धर्म आत्मा की शांति के लिए भिन्न-भिन्न साधन और उपाय अपनाते हैं। सभी मत, सम्प्रदाय और उनके गुरू प्रेम, समता, सदाचार और नैतिकता पर बल देते हैं। इसलिए सच्चे धर्म के मूल में भेद नहीं है। अपने से भिन्न विचार वाले व्यक्तियों में दोष देखना, दूसरे के सम्प्रदाय को हीन मानना, निन्दा करना, आक्रामक होकर हानि पहुंचाना, राष्ट्र की एकता पर ही चोट पहुंचाना है। घृणा और द्वेष से हिंसा तथा नरसंहार के भीषण दृश्य उपस्थित होते हैं जो हमारे देश के लिए कलंक बन जाते हैं। मुजफ्फरनगर दंगों के दौरान हम इसका परिणाम देख चुके हैं।

वास्तव में सांप्रदायिक उपद्रवों के मूल में कोई बड़ी बात नहीं होती। कुछ स्वार्थ परायण लोग विघटन का षड्यन्त्र रचकर भोली-भाली जनता को बहकाकर दूषित वातावरण तैयार कर देते हैं। उसका दुष्परिणाम सारे देश को भुगतना पड़ता है। अत: राष्ट्र का हितचिन्तन करने वाले प्रत्येक नागरिक को साम्प्रदायिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय अखण्ड़ता के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम सब भारतीय हैं, हमारा राष्ट्र एक महान् राष्ट्र है। हमारी संस्कृति, सभ्यता विशाल है। हमारे देश की शासन प्रणाली लोकतन्त्र पर आधारित है। लोकतन्त्र का दर्शन समता, सहिष्णुता, स्नेह और अहिंसा पर निर्भर करता है। समता का तात्पर्य है जाति, वंश, वर्ण वर्ग आदि के साथ ऊंच नीच के भाव का सर्वथा विलय। दूसरा सिद्धान्त सहिष्णुता का है। अर्थात् शान्तचित्त होकर अपने देशवासियों के प्रति प्रेम और उदारता के साथ व्यवहार करें। अशान्त और उद्विग्न होकर उग्रवाद का घृणित कार्य न करें। अहिंसा का सिद्धान्त लोकतन्त्र की आधारशिला है। अहिंसा का पालन मन, वचन और कर्म तीनों सोपानों पर होना चाहिए। लोकतन्त्र के बुनियादी, समता, सहिष्णुता, और अहिंसा मूलक सिद्धान्त को कुछ स्वार्थपरायण व्यक्ति सही परिप्रेक्ष्य में नहीं लेते। लोकतन्त्र के स्थान पर वे स्वार्थ तन्त्र को प्रमुख मानकर भय, आतंक और उपद्रव को व्यवहार में लाने लगते हैं। इस स्वार्थ तन्त्र से राष्ट्र की एकता पर घातक प्रहार होता है, राष्ट्र की अस्मिता कमजोर पड़ती है। इसलिए अगर हम देश को उन्नत, खुशहाल देखना चाहते हैं तो हिंसा, छल-कपट, स्वार्थ की राजनीति, द्वेष को छोड़ना होगा तभी हमारा देश समृद्ध हो सकता है।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

ध्यान शिविर सम्पन्न

आर्य समाज हिरण मगरी उदयपुर के तत्वावधान में आचार्य सानन्द जी के सान्निध्य में दिनांक 19 से 21 सितम्बर 2014 तक त्रिदिवसीय ध्यान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में पचास शिविरार्थियों ने भाग लिया। महर्षि पातंजलि प्रणीत एवं महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग पद्धति के आधार पर आचार्य सानन्द जी ने ध्यान का शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक जीवन में महत्व समझाते हुए इसके प्रयोग शिविरार्थियों को सिखाए। शिविर के समापन के अवसर पर सम्भागियों ने अपने-अपने अनुभव सुनाए। जिज्ञासुओं की शंका का समाधान आचार्य जी ने कुशलता पूर्वक किया।

-भंवर लाल आर्य प्रधान आर्य समाज

thearyasamaj.org

आर्य समाज के प्रति कुछ भ्रान्तियां और उनका निवारण

ले० खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोविन्द राय एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड कोलकत्ता

यह लेख एक आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान आदरणीय राम निवास जी ''गुणग्राहक'' द्वारा लिखित एक लघु पुस्तिका ''जाने आर्य समाज को'' शीर्षक से उद्धृत किया है। यह आर्य समाज को समझने के लिए एक अच्छी पुस्तक है। इसमें विद्वान ने आर्य समाज क्या मानता है और क्या नहीं मानता। इस विषय को बड़ी सरल भाषा में रोचक ढंक से समझाया है। जिसको पढ़कर एक जिज्ञासु व्यक्ति आर्य समाज को अच्छी प्रकार समझ सकता है और आर्य समाज का सदस्य बन कर अपने जीवन को वेदानुसार चला कर अपने व दूसरों के जीवन को सुखी व समृद्धशाली बना सकता है। इस पुस्तक में आर्य समाज के प्रति लोगों की भ्रांतियां और उनका निवारण भी विद्वान् ने अपनी बुद्धि से बड़े अच्छे ढंग से किया है। इस पुस्तक को उपयोगी और लाभदायक समझ कर भ्रांतियों सम्बन्धी कुछ अंश इस लेख द्वारा प्रकाशित करने का प्रयास किया है। आशा है कि पाठकगण इससे लाभ उठाएंगे और मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

भ्रांतियां तथा निवारण इसी भांति-

1. भ्रान्ति-आर्य समाज मूर्ति पूजा को नहीं मानता, इसलिए मूर्तिपूजक आर्य समाज को नास्तिक (ईश्वर को न मानने वाला) कहते हैं।

सच्चाई-संसार में आर्य समाज ही एकमात्र ऐसी संस्था है। जिसके नियमों में परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप का स्टीक परिचय देकर उसकी भक्ति व उपासना करने की सही प्रेरणा दी गई है। परमेश्वर के सत्य स्वरूप को जानने-समझने के लिए हमारे पास वेद ही एक मात्र साधन है। वेद को पढ़े-समझे बिना हम न तो धर्म को समझ सकते हैं और न परमात्मा को। इसलिए आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने तीसरे नियम में वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना धर्म ही नहीं, परम् धर्म घोषित किया है। ऐसे में आर्य समाज को मूर्ति पूजा न करने के कारण नास्तिक कहना एक भ्रम है, एक अज्ञान है। महापुरूषों की कल्पित मूर्तियां बनाकर मनमाने ढंग से उनकी पूजा के नाम पर फल-फूल, मिष्ठान चढ़ाने वाले आज तक न तो वेदों में मूर्ति पूजा का विधान ही दिखा सके और न तर्कों व प्रमाणों से मूर्ति पूजा को ईश्वर की भक्ति व उपासना प्रमाणित कर सके। आर्य समाज प्रारम्भ से लेकर आज तक अपने सब सिद्धान्तों, सब मान्यताओं को हर दृष्टि से वेद के अनुकूल और सत्य सिद्ध करता रहा है। ऐसे में प्रत्येक विचारशील सज्जन का यह नैतिक और मानवीय कर्त्तव्य है कि वह आर्य समाज की ईश्वर सम्बन्धी विचारधारा को जाने, समझे और मूर्ति पूजकों की मनमानी कल्पनाओं के साथ तुलना करके सत्य को स्वीकार करे।

2. भ्रान्ति-मूर्ति-पूजा के दूसरे रूपों जैसे काली, दुर्गा, भैरव, शनि, साईं बाबा आदि कल्पित देवी-देवताओं का विरोध करने के कारण, आर्य समाज को देवों की पूजा न करने, न मानने वाला भी कहा जाता है।

सच्चाई-हमारे प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है-मातृ देवोभव, पितृ देवोभव, आचार्य देवोभव, अतिथि देवोभव आदि वाक्य आपको वैदिक ही नहीं पुराण-पन्थी साहित्य में भी मिल जाएंगे। ऐसे वचन स्पष्ट बताते हैं कि माता देव है, पिता देव है, आचार्य और अतिथि देव है। इनके देव होने में किसी को सन्देह नहीं। पांचवा देव पत्नी के लिए पति है और पति के लिए पत्नी भी देवी है। इन पांच की पूजा-सत्कार का विधान सर्वत्र है और व्यवहारिक भी है। देव का सीधा अर्थ होता है देने वाला। माता-पिता हमें जीवन देते हैं, जीवन के विविध संसाधन व आशीर्वाद देते हैं। आचार्य और अतिथि हमें ज्ञान देते हैं, धर्म-उपदेश देते हैं। पति-पत्नी तो अपना तन, मन, धन और जीवन ही एक दूसरे को दे डालते हैं। ऐसे देवी-देवताओं की श्रद्धा व सम्मान पूर्वक पूजा-सत्कार और सद्व्यवहार करना ही सर्वमान्य और सच्ची देव-पूजा है। यज्ञ का तो एक नाम ही ''देवपूजन'' है। प्राकृतिक देवों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की पूजा (शुद्धि) यज्ञ से ही होती है। आर्य समाज जीवन से जुड़े हुए इन देवों की पूजा करता-कराता है। ऐसे देव-पूजक आर्य समाज को देवी-देवताओं की पूजा का विरोधी कहने वाले विचार करके देखें तो उनका स्वयं का हृदय कह उठेगा कि वे स्वयं इन सच्चे देवों की पूजा न करने के कारण देव पूजा से वंचित है।

3. भ्रान्ति-कुछ लोग कहते हैं कि आर्य समाज श्री राम और श्री कृष्ण, हनुमान आदि को नहीं मानता।

सच्चाई-श्री राम और श्री कृष्ण आदि के कल्पित चित्र व मूर्ति बनाकर, उन पर फल-फूल, चावल, मिष्ठान चढ़ाना ही श्री राम, श्री कृष्ण आदि का मानना है तो आर्य समाज उन्हें नहीं मानता। दूसरी और बाल्मीकि रामायण और महाभारत में वर्णित उनके इतिहास को पढ़कर उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव रखते हुए, उनके श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार अपने गुण, कर्म, स्वभाव बनाना यदि उनका मानना है तो सच यह है कि श्री राम और श्री कृष्ण आदि को आर्य समाज ही मानता है। महर्षि बाल्मीकि ने रामायण लिखने का उद्देश्य बताया है-''रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यं न तु रावणादि वत्।'' अर्थात् मैं आने वाली पीढ़ियों को यह सन्देश देना चाहता हूं कि वे राम की तरह जीवन जीएं, रावण की तरह नहीं। ऐसा केवल आर्य समाज ही कहता और करता है। आर्य समाज श्री राम और श्री कृष्ण के चित्र की पूजा नहीं करता बल्कि चरित्र की करता है जो सबको करनी चाहिए।

4. भ्रान्ति-एक भ्रान्ति यह है कि आर्य समाज श्राद्ध व तर्पण नहीं मानता।

सच्चाई-आर्य समाज हर उस चीज को मानता है जो सच हो, मानव जीवन के लिए उपयोगी हो। तर्क और विज्ञान से युक्त, वैदिक धर्म के हर तत्त्व को आर्य समाज मानता है। आंख बन्द करके बिना जाने व समझे किसी बात को मान लेना बुद्धिमत्ता नहीं। श्राद्ध शब्द श्रद्धा से बनता है। सत्य को धारण करने की हमारी आन्तरिक सामर्थ्य को श्रद्धा कहते हैं। प्रचलित श्राद्ध परम्परा, सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। मर चुके अपने माता-पिता, दादा-दादी के नाम पर वर्ष में एक बार पण्डितों को भोजन खिला देना अधिक अच्छा है या जीवित माता-पिता, दादा-दादी को श्रद्धापूर्वक सेवना करना अधिक अच्छा श्राद्ध है। आर्य समाज जीवित माता-पिता, दादा-दादी आदि की सम्मानपूर्वक सेवा करके सन्तुष्ट करने को सच्चा श्राद्ध मानता है व करता है। तर्पण का तात्पर्य तृप्ति यानि सन्तुष्टि होता है जिसको आर्य समाज वृद्धों की सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट करना मानता है।

5. भ्रान्ति-तीर्थों को न मानने का दोष भी आर्य समाज पर लगाते हैं।

सच्चाई-तीर्थ शब्द का अर्थ होता है, दुःखों से तराने वाला कर्म। जैसे सत्य बोलना, विद्या का अभ्यास करना, सत्संग करना, उत्तम विचार रखना, धर्मानुष्ठान, परमात्मा की भक्ति, ब्रह्मचर्य का पालन करना और विद्यादान कर्म, संसार सागर से तराने वाले कर्म होने से तीर्थ कहलाते हैं। वेद कहता है-उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् धिया विप्रोऽजायतः। अर्थात् पहाड़ों की गुफाओं और नदियों के किनारे रहकर सन्त-महात्मा योगाभ्यास किया करते हैं। ऐसे तपस्वी साधुओं के निकट जाकर प्राचीन काल में लोग सत्संग व शंका समाधान किया करते थे। अब वहां न तो तपस्वी सन्यासी हैं और न धर्म चर्चा के लिए किए जाने वाले तीर्थ यात्री। आर्य समाज सत्य बोलना, विद्या पढ़ना, ब्रह्मचर्य के पालन आदि उत्तम धर्मों को सच्चा तीर्थ मानता है और इनको कोई बुद्धिमान व्यक्ति इन्कार भी नहीं कर सकता।

thearyasamaj.org

वेदालोचन के बिना संस्कृत शिक्षा व मनुष्य जीवन व्यर्थ हैं

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून

कहा जाता है कि ज्ञान की पराकाष्ठा वैराग्य है। इसका अर्थ यह लगता है कि जिस व्यक्ति को जितना अधिक ज्ञान होगा वह उतना ही अधिक वैराग्य को प्राप्त होगा। अब विचार करते हैं कि एक व्यक्ति के अन्दर ज्ञान बहुत ही कम है। इस पहली परिभाषा के अनुसार कहना होगा कि उस व्यक्ति में भौतिक व नश्वर वस्तुओं के प्रति राग, अधिक तथा वैराग्य नगण्य है। जैसे-जैसे उसको यथार्थ ज्ञान होता जाएगा, वैसे-वैसे वह व्यक्ति वैराग्य को प्राप्त होता जाएगा। ईश्वर में ज्ञान की पराकाष्ठा है इससे यह अनुमान होता है कि ईश्वर पूर्ण वैराग्य में स्थित है। हमें लगता है कि ज्ञान की पराकाष्ठा के लिए मुख्यत: दो चीजों की आवश्यकता है। एक तो भाषा व दूसरा ज्ञान। सर्वोत्कृष्ट भाषा संस्कृत है व उसमें ज्ञान की पराकाष्ठा वेदों में है। वेदों का अध्ययन किया हुआ व्यक्ति ही ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त हो सकता है। इतर व्यक्तियों का ज्ञान व उनमें वैराग्य न्यूनातिन्यून होगा।

हम कोई भी भाषा क्यों सीखते हैं ? इसलिए कि हम अपनी बात दूसरों को संप्रेषित कर सकें और दूसरों की बातें व वाक्यों को समझ सकें। इसलिए भी भाषा सीखते हैं कि उस भाषा का जो साहित्य है उसका अध्ययन कर सकें। इन सबसे हमें जीवन में अनेक लाभ होते हैं। भाषा को शुद्ध व सारगर्भित एवं प्रभावशाली रूप से बोलने वाला व्यक्ति ही सम्मान पाता है और जीवन में सफल होता है। यदि हमें भाषा का आधा-अधूरा अधकचरा ज्ञान है तो यह हमारी सफलता में बाधक होता है। अत: सभी का यह प्रयास होता है कि वह उस भाषा को अधिक से अधिक जाने। इसके लिए उस भाषा के व्याकरण आदि को पढ़ने व उसके अभ्यास के साथ उस भाषा के सामान्य व उच्च कोटि के साहित्य का अध्ययन करने से यह कमी पूरी होती है। जितने भी महान व्यक्ति हमारे देश, विश्व व समाज में हुए हैं वह सब शिक्षा, संस्कार, अध्ययन, लेखन, वक्ता-संवाद, व्याख्यान आदि में उच्च स्थिति प्राप्त करने के कारण ही बने हैं। पंडित प्रकाशवीर शास्त्री आर्य समाज के विद्वान, उपदेशक व प्रचारक थे। आप अपने हिन्दी-संस्कृत के ज्ञान तथा सरस, मनोहर, सारगर्भित व प्रभावशाली भाषण शैली के कारण लोकप्रिय हुए और बिना किसी पार्टी के टिकट के अनेक बार स्वतन्त्र रूप से सांसद बने और बड़े-बड़े दिग्गजों को निर्वाचनों में पराजित किया। इतना ही नहीं वह अपने समय में संसद के अन्दर व बाहर लोकप्रिय सांसदों में से एक थे जिन्हें देश के प्रधानमंत्री सहित सभी दलों के नेता आदर देने के साथ उनके वक्तव्यों को पसन्द करते थे। हम श्री नरेन्द्र दामोदर मोदी का भी उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं जिनका प्रधानमंत्री बनना इसलिए संभव हो सका कि उन्हें अपनी बात को सहस्त्रों लोगों की सभा में प्रभावशाली रूप से कहने में महारत हासिल रही है। इसके साथ उनका राजनैतिक अनुभव व अनेकों विषयों का चिन्तन व ज्ञान तथा उनका व्यक्तित्व व साफ सुथरी छवि भी प्रमुख कारण रहा है। यदि उनमें भाषा बोलने पर पकड़ व सरस व सरल वाणी में अभिव्यक्ति का ज्ञान न होता तो जिस बुलन्दी पर वह आज हैं, वह यहां तक न पहुंच पाते। यदि हम यह कहें कि उन्होंने अपने इस गुण से वर्तमान समय के सब नेताओं को पीछे छोड़ दिया है और पूर्व के सभी नेताओं से वह आगे निकल गए हैं, तो इसमें कोई अत्योक्ति न होगी। अत: भाषा का जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है।

ईश्वर ने हमें हमारा शरीर बना कर भेंट किया है जो कि ईश्वर की सभी रचनाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण कठिन व जटिल होने के साथ सर्वोत्तम रचना है। हमारे शरीर में आंख, नाक, कान, जिहवा, त्वचा पांच इन्द्रियां हैं जिनका प्रयोग हम देखने, सूंघने, सुनने, चखने या स्वाद के लिए एवं स्पर्श कर नरम व कठोर, ठण्डा व गर्म आदि वस्तु के अनेक गुणों को जानने के उद्देश्यों से करते हैं। इन्हीं उद्देश्यों के लिए यह इन्द्रियां परमात्मा ने बना कर हमें दी है और हमें इनके उपयोग का ज्ञान भी स्वयं ही Inbuilt रूप से दिया हुआ है। यदि हम इन ज्ञान इन्द्रियों से यह उपयोग न लें तो फिर ईश्वर से हमें इनका मिलना व्यर्थ सिद्ध होता है। जिन लोगों को यह या इनमें से कुछ शक्तियां नहीं हैं वह जीवन भर उन्हें ठीक कराने में इधर-उधर घूम कर व चिकित्सा कराकर अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं, इससे इन इन्द्रियों की महत्ता का पता चलता है। इसी प्रकार से ईश्वर ने हमें वेदों का ज्ञान व वेदों की भाषा वैदिक संस्कृत का ज्ञान भी दिया व कराया है। यदि हम संस्कृत भाषा को जानकर वेदों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन नहीं करते तो हमारी स्थिति इन्द्रिय विहीन एक अपंग व्यक्ति के समान सिद्ध होती है। भाषा के अध्ययन से हमें विदित होता है कि हमारे आदि-कालीन सभी पूर्वज इस भाषा को बोलते थे, वेदों का अध्ययन सुनकर करते थे व वेदों का ज्ञान प्राप्त करते थे। वेदों का ज्ञान प्राप्त कर उस ज्ञान का उपयोग वह स्वकल्याण, समाज, देश व विश्व के कल्याण के लिए करते थे। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि अधिकांश लोगों को वेदों के सभी मंत्र स्मरण व कण्ठाग्र होते थे। वह इनके अर्थ भी जानते हैं। हमें हिन्दी भाषा का ज्ञान है। हिन्दी में लिखी अध्यात्म, समाज, राजनीति, कहानी, सरल भाषा के पद्य व गद्य को हम आसानी से समझ सकते हैं। यदि हमें संस्कृत भाषा का ज्ञान होता तो हम संस्कृत में लिखी हुई पुस्तकों का ज्ञान पढ़कर प्राप्त कर सकते थे। सामान्य पुस्तकें ही क्यों, महाभारत, रामायण, गीता, उपनिषद्, दर्शन, मनुस्मृति, आयुर्वेद आदि के ग्रन्थ और चारों वेदों को पढ़कर अधिकांशत: या समझने में असमर्थ है। हम ही क्या संस्कृत पढ़े लिखे सभी स्त्री व पुरूष भी इन सभी पठनीय ग्रन्थों को नहीं पढ़ते हैं। हमें लगता है कि वह सब कर्त्तव्यच्युत हैं। ईश्वर ने वेदों व संस्कृत भाषा का ज्ञान क्यों व किस लिए दिया था ? इस प्रश्न पर विचार करने पर जो तथ्य सामने आते हैं उनसे विदित होता है कि ईश्वर ने वेदों का सफल मानव जीवन को सर्वांगपूर्ण रूप से जीने, ज्ञान विज्ञान को जानने व समझने तथा उससे अपने जीवन को सफल करने, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि आदि प्रयोजनों के लिए दिया था। वेदों से दूर जाने या रहने का अर्थ है कि जीवन के यथार्थ उद्देश्य से दूर जाना या रहना है। इससे जीवन विफल होता है। भारी हानि होती है जिसका संसार में कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इतना समझ सकते हैं कि यदि किसी की करोड़ों अरबों की सम्पत्ति लूट ली जाए तो उसकी जो हानि होती है उससे अधिक हानि वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन न करने व उसे जानने में कृत्त कार्य न होने से होती है। यह बात वेदों के मर्म व रहस्यों को न जानने वालों को समझ में नहीं आ सकती। इसे तो महर्षि ब्रह्मा, महर्षि दयानन्द, मर्यादा पुरूषोत्तम राम, योगेश्वर श्री कृष्ण, महर्षि पतंजलि, महर्षि कपिल, महर्षि कणाद, महर्षि गौतम, महर्षि वेद व्यास व महर्षि जैमिनि आदि ने ही जाना था या वह लोग जान सकते हैं जिन्होंने वेद और वैदिक साहित्य रूपी महासागर में डुबकी या गोते लगाये हों। हम यह भी कहना चाहते हैं जिसने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ पढ़ा है उसे पूरे वैदिक साहित्य को पढ़कर होने वाले ज्ञान का अधिकांश ज्ञान हो जाता है। अत: समस्त संसारवासियों को राग-द्वेष व पक्षपात शून्य होकर न्यूनातिन्यून सत्यार्थ प्रकाश अवश्य पढ़ना चाहिए।

हम यहां प्रो. सन्तराम लिखित संक्षिप्त महाभारत में द्रोपदी, युधिष्ठिर जी के धर्म विषय में शंका करने पर द्रोपदी ने एक दिन धर्मराज से कहा-राजन! आप कहा करते हैं कि संसार को सुख-दु:ख देने वाला विधाता है।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

thearyasamaj.org

पृष्ठ 5 का शेष-वेदालोचन के बिना.....

सो मालूम देता है कि विधाता जो सुख-दुख देता है, माता-पिता की भांति स्नेह से नहीं और न ही न्यायकारी विभाजक की तरह पुण्य और पाप देखकर देता है, किन्तु साधारण जनवत् डंडे के डर से बलवानों को सुख और भले मानसों को दु:ख देता रहता है और कुछ नहीं। एवमेव धर्म अधर्म भी पुरूष को स्वभावी लोगों को दु:ख दे जाते हैं। यदि मेरा विचार ठीक न होता तो दुर्योधन आदि पापी नास्तिक, सुखी और आप सर्व प्रकार के सुख एवं सुख साधनों से लम्बे काल के लिए वंचित न होते ? यह सुन धर्मराज बोले-देवी! आर्य होकर अनार्यों की भांति धर्म और ईश्वर पर शंका मत कर, क्योंकि जो धर्म पर शंका करता है उसका कोई प्रायश्चित नहीं। देवि! धर्म स्वर्ग जाने के लिए विमान एवं भवसागर तरने के लिए दृढ़ नौका है। यदि धर्म निष्फल हो तो इतने-इतने बड़े ऋषि, मुनि, राजे, महाराजे क्यों सेवन करें ? धर्म के बिना यह सारा जगत् पाप समुद्र में क्षण में डूब जाए। धर्म का करना पुरूष का कर्त्तव्य है, यह समझ धर्म करना चाहिए।

नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि! चराम्युत। ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्ययित्युत॥ (वन. 13/2)

धर्मएव मन: कृष्णे! स्वभावा चैव मेधृतम्। धर्म वाणिज्य की हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्॥ (वन. 13/5)

राजपुत्रि! मैं फल की इच्छा से नहीं, किन्तु कर्त्तव्य समझ दान, यजन आदि कर्म करता हूं। धर्म को सौदे के ढंग पर करना, धर्मवादियों ने निन्दित कर्म कहा है। कृष्णे! विधाता पर भी आक्षेप मत कर, किन्तु उसे प्रणाम कर। उसकी वेद शिक्षा का पाठ कर, क्योंकि उस अमृत पुरूष की कृपा से मर्त्य स्वभाव मनुज भी 'अमृत' हो जाता है। इस उत्तर को सुन कृष्णा तो शुद्ध संकल्प से ईश्वर और धर्म की महिमा अनुभव करने लग गई, पर भीमसेन बोल उठे। उन्होंने कहा-राजन्! यदि कर्त्तव्य पर ही आपकी धारणा है तो आप अपने वर्ण धर्म (क्षात्र धर्म) को ग्रहण कीजिए। भिक्षा मांगना और दीन-हीन जनों की भांति लुक छिप कर दिनों को बिताना किस कर्त्तव्य सूत्र का वचन है ? हमने तो सुना है, क्षत्रिय का पालनीय धर्म बल एवं पौरूष दिखाना है। इसलिए कायरता छोड़, मेरी और अर्जुन की सहायता से शत्रु वन को भस्म कर तेज प्रकाश कीजिए। आखिर सम्बन्धियों को, मित्रों को और अपने को कष्ट देने वाला कर्म कहां का धर्म है ? यह तो हमारे विचार में कुकर्म (पाप) ही कहलाने के योग्य है, अत: इसे छोड़ो। भीम के उत्तर में धर्म राज ने कहा-वीर! तुम सत्य कहते हो, वनवास क्षत्रियोचित नहीं, पर हम यहां एक सत्य प्रतिज्ञा रूपी धर्म पालने के लिए आए हैं। अब इस धर्म को त्याग पृथ्वी पर शासन करना, आर्यत्व के विरूद्ध ही नहीं किन्तु मरने से भी बुरा है-

आर्यस्य मन्ये मरणाद्गरीयो यद्धर्ममुत्क्रस्य मही प्रशासेत। (वन पर्व 34/15)

और मेरी प्रतिज्ञा तो धर्म तथा सत्य पालन के सम्बन्ध में यह है-

मम प्रतिज्ञांच निबोध सत्यां वृक्षे धर्ममृताजीविताच्च। राज्यं च पुत्रांश्च यशोधनं च सर्व न सत्यस्य कलामुपैति॥ (वन पर्व 34/32)

जीवन और अमृत से भी मैं तो सत्य धर्म को खरीदूंगा, क्योंकि मैं समझता हूं राज्य, पुत्र, यश, धन आदि सर्व पदार्थ सत्य की अंश कला को भी प्राप्त नहीं हो सकते। इत्यादि विचारों से सबको सन्तुष्ट किया। वेदालोचना के सम्बन्ध में आइए, महर्षि दयानन्द के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं। महर्षि दयानन्द ने मूर्ति पूजा की सत्यता व यथार्थ स्थिति, सच्चे ईश्वर का स्वरूप, उसकी प्राप्ति के उपाय, मृत्यु क्या है व उस पर किस प्रकार से विजय प्राप्त की जा सकती है, प्रश्नों के उत्तर खोजने और उन पर विजय पाने के लिए गृह त्याग किया था। वह अपने भावी जीवन में देश भर में घूमें और विद्वान साधु, महात्मा व योगियों के सम्पर्क में आए। उनकी संगति व निकटता से उनसे ईश्वर व योग सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया। देश के एक स्थान से दूसरे व इसी प्रकार भ्रमण करते हुए उन्हें अनेक पुस्तकालयों को देखने व अनेकानेक गुण, कर्म, स्वभाव वाले व्यक्तियों में मिलने का अवसर मिला जहां उन्हें हस्तलिखित पाण्डुलियों व प्रतिकृतियों के रूप में अनेक दुर्लभ, ज्ञान व विद्या से परिपूर्ण ग्रन्थों को देखने व पढ़ने का सुअवसर मिला जो शायद ही उनसे पूर्व अन्य किसी को सुलभ हुआ हो ? जहां कभी कोई योगी मिलता था तो वह उसे टटोलते थे और सच्चे योगियों का शिष्यत्व प्राप्त कर उनसे योग व उपासना विषयक सभी ज्ञान व क्रियाएं समझते थे, उनका अभ्यास कर कृतकार्य होते थे। उन्हें योग के योग्य गुरू मिले जिनसे उन्होंने योग विद्या सीखी व उनका अभ्यास सफलता मान लिया जाता है। इसका कारण क्या था ? हमें लगता है कि जब उन्होंने नाना प्रकार के प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ देखें तो उनमें स्थान-स्थान पर ईश्वर प्रदत्त वेदों के ज्ञान की चर्चा मिलती थी जिनसे उनका चित्त वेदों को पूर्ण रूप से जानने को उद्वेलित होता था। योगियों व गुरूओं से पूछने पर उन्हें बताया गया था कि इसके लिए किसी योग्य गुरू से आर्ष परम्परा का संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करना होगा। हमें यहां यह भी अनुभव होता है कि योग सीखकर सफलता प्राप्त करने पर यद्यपि हृदय की ग्रन्थियों के टूटने व सर्वसंशयों की निवृत्ति होने पर भी वेदों में जो ज्ञान का समुद्र है, उसका ज्ञान व प्रकाश योगी की आत्मा को नहीं होता। इस अपूर्णता को दूर कर पूर्णता प्राप्त करने के लिए योगी को भी वेदाध्ययन या वेदालोचन आवश्यक होता है। महर्षि दयानन्द ने इस रहस्य को जाना व इसका साक्षात् किया था। इसी कारण पूर्ण योग सिद्धि से सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी वह वेदों के अध्ययन में तत्पर हुए। वह सन् 1860 में मथुरा पहुंच कर प्रज्ञाचक्षु स्वामी गुरू विरजानन्द सरस्वती से मिले और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। ढाई व तीन वर्ष उनके चरणों में बैठकर उनसे आर्ष व्याकरण का अभ्यास किया व अपने मनोरथ में सिद्धि को प्राप्त होकर आप्त काम हुए। स्वामी गुरू विरजानन्द सरस्वती जी के बारे में कहा जाता है कि वह व्याकरण के सूर्य थे। यह पूर्ण सत्य है, परन्तु व्याकरण का सूर्य क्यों व किसके लिए व किस कारण से थे ? हमें अनुभव होता है कि यह सब कुछ उन्होंने वेदालोचना के लिए ही प्राप्त किया था। प्रज्ञाचक्षु होकर भी वह वेद के रहस्यों से पूर्णतया विज्ञ व परिचित थे, ऐसा निष्कर्ष अध्ययन व मनन करने पर निकलता है। तभी तो वह महर्षि दयानन्द को यह मूल्यवान रहस्य बता सके थे कि मनुष्य कोटि के लोगों ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनमें हमारे ऋषियों व महर्षियों की निन्दा व मिथ्या कथाएं हैं, वह अनार्ष होने से त्याज्य हैं और ऋषि प्रणीत ग्रन्थ ही आर्ष ग्रन्थ हैं जिनका अध्ययन करना सत्यान्वेषक के लिए आवश्यक व अपरिहार्य है। आर्ष कोटि के ग्रन्थों का अध्ययन कर ही वेदालोचन किया जा सकता है अन्यथा मात्र व्याकरण के अध्ययन से वेदालोचन भली प्रकार से नहीं होता। महर्षि दयानन्द ने आर्ष व अनार्ष सभी प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अत: वह आर्ष-अनार्ष का जितना गहन ज्ञान रखते थे, वह महाभारत काल के बाद किसी एक व्यक्ति में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। इतिहास पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द जितना वेदों व आर्ष ग्रन्थों का ज्ञान किसी के लिए सम्भव भी नहीं था। अत: महर्षि दयानन्द के योग प्रवीण होने पर भी विद्या व ज्ञान प्राप्ति की जो अवशिष्ट भूख उनमें थी, वह गुरू विरजानन्द के यहां अध्ययन करने व बाद में उस पर मनन करने से पूरी हुई। उनके जीवन का उद्देश्य लगभग पूरा हो चुका था। अब वेदालोचना के बाद का अवशिष्ट कर्त्तव्य उन्हें गुरू विरजानन्द व ईश्वर साक्षात्कार से ज्ञात व प्राप्त हुआ, वह था-वेदों का प्रचार व प्रसार। वेदों का प्रचार व प्रसार, जो महाभारत काल व उसके बाद बन्द व समाप्त हो गया था, उसे पुनजीर्वित करना। यह गुरू विरजानन्द की आज्ञा थी और परमात्मा की प्रेरणा व आज्ञा अर्थात् वेदाज्ञा भी थी। इस जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष अर्थात् अभ्युदय व नि:श्रेयस को उन्होंने सन् 1863 से 30 अक्तूबर, सन् 1883 को अपनी मृत्यु पर्यन्त पालन करके प्राप्त किया।

हमारे यह सब कहने का उद्देश्य यह बताना मात्र है कि संसार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा को पढ़े। संस्कृत व वैदिक साहित्य को पढ़ने से ही उसे अपने साध्य, उद्देश्य व साधनों का ज्ञान होगा व जीवन में सफलता मिलेगी। संस्कृत का अध्ययन करने पर ही वह वेद एवं इतर वैदिक साहित्य का पूर्णत: अध्ययन करने में सफल हो सकते हैं। संस्कृत भाषा के अध्ययन का उद्देश्य ही वेद एवं इतर वैदिक साहित्य का संगोपांग अध्ययन करना है। यदि ऐसा नहीं किया तो संस्कृत न पढ़ने वालों को तो भारी हानि होगी ही, संस्कृत पढ़ाने वालों को भी वेद न पढ़ने अर्थात् वेदालोचन न करने से उनका संस्कृत पढ़ना व्यर्थ सिद्ध होगा। इससे ईश्वर प्रदत्त वेद एवं संस्कृत भाषा का यथोचित आदर न करने के कारण ईश्वर की ओर से दण्ड के भागी भी वह मनुष्य अवश्य होंगे। आईये, वेद व संस्कृत के अध्ययन का व्रत लें और ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए जीवन को सफल करें।

thearyasamaj.org

आर्य समाज जालन्धर छावनी का वेद सप्ताह सम्पन्न

आर्य समाज जालन्धर छावनी का वेद सप्ताह 22 अगस्त से 28 अगस्त 2014 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय कुमार जी शास्त्री के वेदों पर प्रवचन और भजनोपदेशक श्री अरुण कुमार जी वेदालंकार के भजन प्रात: 6.30 बजे से 8.00 बजे तक और सायं 8.30 बजे से रात्रि 10.00 बजे तक होते रहे। गुरुकुल करतारपुर के ब्रह्मचारियों ने भी इस कार्यक्रम में भाग लेकर लोगों को उत्साहवर्धक बना दिया। इस कार्यक्रम में आर्य समाज के गणमान्य सदस्यों एवं के.एल.आर्य गर्ल्ज स्कूल जालन्धर छावनी के अध्यापक गण एवं बच्चों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। रविवार को मुख्य समारोह में सप्ताह भर से बने सभी यजमान परिवारों के सहयोग से तथा भजन प्रवचन ने इस कार्यक्रम को बहुत रोचक बना दिया। आर्य समाज के मंत्री श्री जवाहरलाल महाजन ने सुन्दर ढंग से पूरे सप्ताह मंच का संचालन किया। आर्य समाज के सदस्यों ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये अपना पूरा पूरा सहयोग दिया। **-जवाहर लाल महाजन मंत्री आर्य समाज**

दयानन्द मठ चम्बा का 34 वां वार्षिकोत्सव एवं दुर्लभ शारद यज्ञ

दयानन्द मठ चम्बा का 34 वाँ वार्षिकोत्सव दिनाँक 21-09-2014 रविार से 24-09 2014 बुधवार तक मनाया गया। यज्ञ प्रात: 6:30 बजे से 9:30 तक चलता रहा। सांयकाल सत्र में 4:00 से 7:30 तक चलता रहा। यज्ञ पूज्यपाद स्वामी सुमेधानन्द जी की अध्यक्षता में चलता रहा। यज्ञ में मन्त्रपाठ दयानन्द आदर्श विद्यालय की कन्याओं के द्वारा किया गया। भजनों का कार्यक्रम विद्यालय की संगीताचार्य सुश्री मधुरिका के द्वारा हुआ तथा तबले पर संगत स्कूल के लडकों के द्वारा की गई। पं. हरीश मुनि जी के भी भजन होते रहे। उपदेश स्वामी सुमेधानन्द जी के द्वारा होता रहा। 24-09-2014 को सांयकाल वार्षिकोत्सव यज्ञ की पूर्णाहुति हुई।

दिनांक 25-09-2014 वीरवार प्रात: 6:30 बजे से 14 वाँ शारद यज्ञ आरम्भ हुआ जो लगातार सारी रात चलता रहा। दिनांक 26-09-2014 को प्रात: 9:30 बजे पूर्णाहुति हुई। यह अद्‌भुत यज्ञ लगातार 27 घण्टे चलता रहा। वेदपाठ आदर्श विद्यालय की कन्याओं द्वारा तथा संगीत का कार्यक्रम विद्यालय की संगीताचार्य तथा पं. हरीश मुनि जी द्वारा होता रहा। अमृतसर से आए श्री हेमराज जी के भी भजन बीच-बीच में होते रहे। प्रवचन बीच -बीच में स्वामी सुमेधानन्द जी व अन्य विद्वानों के द्वारा सम्बोधन होता रहा। इस सारे कार्यक्रम में विशेषता यह रही थी कि आदर्श स्कूल की कन्याओं के द्वारा किया गया वेदपाठ अपने आप में अद्‌भुत था। पूज्यपाद स्वामी जी द्वारा किया गया यह एक अनूठा प्रयास था जो कि सफल रहा। विद्यालय की संगीताचार्य सुश्री मधुरिका जी द्वारा तैयार किए गए बच्चों के भजनों का कार्यक्रम भी अनूठा प्रयास था। बाहर से झारखण्ड़, राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश से आए लोगों ने इस सारे कार्यक्रम एवं शारद यज्ञ की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस सारे कार्यक्रम को संचालन करने एवं स्कूल के बच्चों को अनुशासित रखने में स्कूल की मुख्याध्यापिका श्रीमती बृजवाला जी व अन्य अध्यापिकाएं एवं अध्यापक प्रात: 6:30 से 9:30 तक तथा सांयकाल को 4:30 से 7:30 बजे तक लगातार उपस्थित रहते थे। इन सबके अतिरिक्त आचार्य महावीर एवं श्री ऋषि जी एवं श्रीमती सरस्वती जी लगातार आए हुए मेहमानों की देखभाल करते रहे। पूज्यपाद स्वामी जी द्वारा चलाए गए अद्‌भुत शारद यज्ञ की लोगों ने सराहना की।

-डॉ. इन्द्र कुमार शर्मा संरक्षक आर्य समाज मोहल्ला गोबिन्दगढ़

जो जन ईश्वर भक्त, उन्हीं को सफल बनाना

-पंडित नन्दलाल निर्भय पत्रकार, भजनोपदेशक ग्राम मंत्रालय बहीन, जनपद-पलवल (हरियाणा)

प्यारा भारत देश था, दुनिया का सरताज।
भारत वीरों का सुनो, था जगती में राज॥
था जगती में राज, सभी करते थे आदर।
चरित्रवान् ईमानदार थे सब नारी नर॥
सत्य अहिंसा सदाचार के सब थे पालक।
शासक थे गुणवान, रोम विक्रम से लायक॥

अविद्या रूपी रोग से, पनप गई थी फूट।
फूट आपसी से हुई, आर्यवर्त्त की लूट॥
आर्यवर्त्त की लूट, गुलामी जिससे आई।
विदेशियों ने यहां, रात-दिन आफत ढाई॥
आजादी की मांग, यहां जो जन करते थे।
देश भक्त गुणवान, सुजन निश दिन मरते थे।

देव दयानन्द ने किया, पावन वेद प्रचार।
जागे सोये भारती, सुन ऋषि की हुंकार॥
सुन ऋषि हुंकार, देश के वीर दहाड़े।
तांत्या टोपे, तुलाराम ने, दुष्ट पछाड़े॥
नन्दकिशोर मंगलपाण्डे अरू लक्ष्मीबाई।
रणधीरों ने स्वतन्त्रता की लड़ी लड़ाई॥

भारत मां के लाड़ले, थे सांगा प्रताप।
तेग बहादुर ने किया, पावन प्रणव जाप॥
पावन प्रणव जाप, धर्म हित शीश कटाया।
गोविंद शिवा महान, देश हित युद्ध मचाया॥
बिस्मिल, शेखर, भगत सिंह, ने फांसी खाई।
नेता वीर सुभाष, निराला था बलदाई॥

देश धर्म पर हो गये, देश भक्त कुर्बान।
भारत मां की कर गये, जग में ऊंची शान॥
जग में ऊंची शान, धन्य था उनका जीवन।
उनको कर लो याद, बनो नर-नारी सज्जन॥
भला इसी में युवक-युवतियों, कदम बढ़ाओ।
देश भक्त बलवान बनो, कर्त्तव्य निभाओ॥

विधान सभा का अब यहां, होगा शीघ्र चुनाव।
धूर्त चलाएंगे सुनो, अपने-अपने दाव॥
अपने-अपने दाव, सज्जनों! मत घबराना।
किया भला क्या काम, पूछना भूल न जाना॥
जो जन ईश्वर भक्त, उन्हीं को सफल बनाना।
खुदगर्जों को कभी न अपने मुंह लगाना॥

सफाई अभियान का प्रारम्भ

स्वच्छ भारत के अभियान के तहत 2 अक्तूबर 2014 के गांधी जयन्ती के अवसर पर गांधी आर्य सीनियर सैकेण्ड़री स्कूल बरनाला में सफाई अभियान प्रारम्भ किया गया। स्कूल के डायरैक्टर डा. एच. कुमार कौल, कार्यवाहक प्रधानाचार्य श्रीमती सुमन अग्रवाल, उपप्रधानाचार्य श्री बलबिन्दर सहित समूह स्टॉफ व छात्र-छात्राओं ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। स्कूल प्रांगण की सफाई के साथ-साथ टॉयलेट कमरों की भी सफाई की गई। इस अवसर पर बोलते हुए स्कूल के डॉयरैक्टर डॉ. एच. कुमार कौल ने कहा कि सफाई एक दिन, एक सप्ताह या सीमित समय के लिए नहीं बल्कि यह अभियान लगातार चलना चाहिए। सफाई हमारी दिनचर्या का आवश्यक अंग होना चाहिए। सफाई ही प्रकृति का आवश्यक आभूषण है। यदि हमें गांधी जी के सपनों को साकार करना है तो वास्तव में इसका प्रारम्भ स्वच्छ भारत अभियान से अच्छा कुछ नहीं हो सकता। **-डॉ. एच. कुमार कौल डायरैक्टर स्कूल**

thearyasamaj.org

वेदवाणी

स्वार्थ त्याग कर पवित्रान्तः करण से नित्य आपकी वन्दना करें

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥

ऋ० १।१।७; साम. पू. १।१।४॥

विनय-जब से हम उत्पन्न हुए हैं, दिन के पश्चात् रात और रात के पश्चात् दिन आता जाता है। प्रतिदिन एक नया-नया दिन और एक नयी-नयी रात आती-जाती है। इस प्रकार यह अनवरत, अविश्रान्त काल-चक्र चल रहा है। इस काल-चक्र में हम कहां जा रहे हैं ? हे मेरे प्रभो! अग्निदेव! तुमने तो ये अहोरात्र इसलिए रचे हैं कि प्रत्येक अहोरात्र के साथ अपनी आत्मिक उन्नति का दायां और बायां पैर आगे बढ़ाते हुए हम प्रतिदिन तुम्हारे निकट पहुंचते जाएं। यदि हम प्रत्येक अहोरात्र के आरम्भ में, अर्थात् प्रातः काल और सांयकाल के समय में अपनी बुद्धि द्वारा तुम्हारे आगे झुकते हुए, नमन करते हुए तथा कर्म द्वारा भी अपने "नमः" की भेंट तुम्हारे प्रति लाते हुए, तुम्हारे लिए स्वार्थ-त्याग करते हुए चलेंगे तो यह दिन-रात का चक्र हमें एक दिन तुम्हारे चरणों में पहुंचा देगा। इसलिए, हे अग्निरूप परमदेव! हम आज से निश्चय करते हैं कि हम प्रत्येक अहोरात्र को (प्रातः काल और सांयकाल) अपनी बुद्धि तथा कर्म द्वारा तुम्हें नमस्कार की भेंट चढ़ाते हुए (आत्म-समर्पण व स्वार्थ-त्याग करते हुए) ही अब जीएंगे और इस तरह जहां प्रत्येक दिन के श्रममय काल में हमारा दायां पैर तुम्हारी ओर बढ़ेगा, वहां प्रत्येक रात्रिकाल में हमारी उन्नति का बायां पैर उस उन्नति को स्थिर करता जाएगा। हे प्रभो! ये दिन-रात इसीलिए प्रतिदिन आते हैं। निश्चय ही आज से प्रत्येक अहोरात्र हमें तुम्हारे समीप लाता जाएगा। आज से प्रतिदिन हम स्वार्थ-त्याग द्वारा पवित्रान्तःकरण होते हुए और पवित्रान्तःकरण से प्रातः सायं तुम्हारी वन्दना करते हुए प्रतिदिन तुम्हारी ओर आने लगे हैं, हे प्रभो! प्रतिदिन तुम्हारे समीप आते जा रहे हैं।

साभार-वैदिक विनय

आर्य समाज शहीद भगत सिंह कालोनी के साप्ताहिक सत्संग में हवन यज्ञ का आयोजन

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में हवन यज्ञ में हिस्सा लेते हुये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान श्री स्वतंत्र कुमार जी एवं आर्य समाज के सदस्य।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह कालोनी जालन्धर में आर्य समाज के मंत्री रणजीत आर्य की अध्यक्षता में हवन यज्ञ व सत्संग का आयोजन किया गया। समारोह में मुख्य यजमान के रूप में स्वर्ण शर्मा, विजय लक्ष्मी ने परिवार के साथ शामिल होकर यज्ञ में आहुतियां डाली। पं. शिवा ने आए हुए यजमानों से आहुतियां डलवाई। सत्संग समारोह में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपप्रधान श्री स्वतन्त्र कुमार ने विशेष रूप से शामिल होकर आयोजन कमेटी को बधाई दी। उन्होंने कहा कि गृहिणी को चरित्रवान होना आवश्यक है। पं. रमेश आर्य ने सत्संग में कहा कि सभी को प्रेम भावना के साथ रहना चाहिए। प्रेम से ही सभी के दिलों को जीता जा सकता है। इससे पहले श्रीमती सोनू भारती ने भजनों को सुनाकर सबका मन मोह लिया। इस दौरान सुभाष आर्य, भूपेन्द्र उपाध्याय, रमेश मुटरेजा, चौ. हरिचन्द, अश्विनी डोगरा, लवनीत, राजेश वर्मा, सुदर्शन आर्य, शिखा आर्य, अनु आर्य, संगीता मल्होत्रा, हर्ष लखनपाल, अनिल मिश्रा, पवन शुक्ला, अर्चना मिश्रा, किशनपाल आर्य, विनोद तिवारी, संगीता तिवारी, ललित कालिया, गौरव आर्य, मोहन लाल, परमजीत कुमार, मनप्रीत शर्मा, उषा देवी, तिलक राज, अमित अरोड़ा तथा अन्य उपस्थित थे। **-रणजीत आर्य मन्त्री आर्य समाज**

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।